Purva Mimaansa
A Multi-discipinary Bi-annual Research Journal
(Double Blind Peer Reviewed)
Vol. 8 No. 1-2, March-Sep. 2017
ISSN : 0976-0237

समकालीन भारतीय दर्शन और सर्वधर्म समभाव

रितु गुप्ता

सारांश

ज्यों–ज्यों युगों का निर्धारण किया जाता है, त्यों–त्यों यह बात स्पष्ट होती जाती है कि अन्य देशों की भांति भारत में भी दर्शन का विकास समाज के विकास के साथ जुड़ा हुआ है। आज भारत को अपनी परम्परा के आधार पर अपने दर्शन का विकास करना है और जब तक भारत में वर्ग रहेंगे तथा वर्ग–संघर्ष चलता रहेगा तब तक दर्शन के क्षेत्र में दो प्रमुख धाराएँ – भौतिकवाद तथा प्रत्ययवाद एक दूसरे के विरूद्ध संघर्ष करती रहेंगी। प्रत्ययवादी वेदान्त की पुनर्व्याख्या से अपने को सन्तुष्ट करेंगे, जबकि भौतिकवादी द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद का निर्माण करेंगे जो वर्ग–संघर्ष में विजय–प्राप्ति के लिए अनिवार्य हैं। वे दिन गए जब भारतीय बुद्धिजीवी इस प्रश्न पर शंकाशील थे कि संसार में कर्म करना उचित है अथवा नहीं.....। कर्म की आवश्यकता का प्रचार किया गया है 'भगवद्गीता' और 'योगवाशिष्ठ' में, 'ज्ञानेश्वरी' और 'गीतारहस्य' में, बंकिम चट्टोपाध्याय के 'आनन्दमठ' में तथा विवेकानन्द आदि से लेकर गांधी और राधाकृष्णन् तक अनेक विचारकों द्वारा, लेकिन सदैव वेदान्त धर्म के दायरे में। एम. एन. श्रीनिवासन् के मतानुसार, अब समय आ गया है जब कर्म को विज्ञान पर, जो धर्म का विरोधी है, आधारित किया जाए। ऐसी स्थिति में आधुनिक भारतीय दार्शनिक का कर्त्तव्य है कि वह भारतीय दार्शनिक परम्परा में पाए जाने वाले वैज्ञानिक और भौतिकवादी तत्वों पर दृष्टिपात करे। आज भी हम अपने सनातन मार्ग पर लौट कर भारत भूमि को कर्मभूमि में बदल सकते हैं और अपनी तात्कालिक समस्याओं का समाधान कर सकते हैं।

जीवात्मा क्या है?परमात्मा क्या है?जीवात्मा–परमात्मा का परस्पर क्या सम्बन्ध है?माया किसे कहते हैं?प्रशांत ब्रह्म–महासमुंद्र में सृष्टि–तरंग माला का क्या कारण है? सृष्टि का कर्त्ता कौन है?इसका सच्चा स्वरूप क्या है? कर्त्ता को आखिर क्या सूझी कि वह इस अनन्त सुख–दुःखमय संसार की, जिसमें सुख भी स्थायी नहीं है, प्रत्युत दुःख का ही पूर्वरूप मात्र है, रचना करके जीव को घंटीयन्त्र के समान घुमाने लगा?हम कौन है? कहाँ से आए हैं? मरणोपरांत कहाँ जाएँगे?इन्हीं सब विषयों का विवेचन करना दर्शन का मुख्य विषय है।

भारत में दर्शन के विकास–क्रम की एक निजी विशेषता रही है। भारतीय दर्शन ने विविधता की दिशा मे जो खोया, गहराई की दिशा में उसे पा लिया। पुराने विचारों ने नए आने वाले विचारकों की दृष्टि में ऐसे प्रामाणिक वचन का स्थान पा लिया जिनका उल्लंघन करना उनके लिए असम्भव बन गया। 'नए आने वाले प्रतिपादक सदा अपने को पूर्ववर्ती आचार्यों की व्याख्याओं से बाँध लेते और कभी उनका खंडन नहीं करते।'1

कभी–कभी इस तरह की भ्रांति होती है कि समकालीन भारतीय चिन्तन में केवल प्राचीन भारतीय दर्शन की पुनरावृति की गई है। यहाँ इस भ्रांतिमूलक रूप के निराकरण के सम्बन्ध में केवल इतना ही कहना पर्याप्त और प्रासंगिक होगा कि यद्यपि भारतीय दर्शन में अतीत के प्रति श्रद्धा या आस्था का भाव दिखता है लेकिन इसका यह अर्थ कतई नहीं है कि उसमें सृजनशीलता का अभाव है।

असिस्टेंट प्रोफेसर, हिंदी विभाग, जी. एम. एन. (पी.जी.) कॉलेज, अम्बाला छावनी

Vol. 8 No. 1-2, March-Sep. 2017
ISSN : 0976-0237

समकालीन भारतीय चिंतन में एक ओर जहाँ प्राचीन वेद–वेदान्त का प्रभाव दिखता है वहीं दूसरी ओर यहाँ पाश्चात्य दार्शनिक विचारधाराओं का भी स्पष्ट प्रभाव दृष्टिगत होता है। प्रो. देवराज का यह कहना ठीक ही लगता है कि समकालीन भारतीय चिंतन में भाषा विश्लेषणवादी तथा अस्तित्ववादी विचारधारा का भी स्पष्ट प्रभाव है।2 फिर वेदान्त आदि के सम्बन्ध में भी यह देखा जा सकता है कि आधुनिक विचारकों ने वेदान्त को भी प्राचीन और परम्परागत ढंग से प्रतिपादित नहीं किया है, बल्कि उसे अधिक व्यापक, व्यावहारिक और यथार्थवादी ढंग से प्रतिपादित किया है। इस सम्बन्ध में नव्य वेदांत की बात की जा सकती है। नव्य वेदान्त के सम्बन्ध में प्रो. संगम लाल पाण्डेय ने माना है कि प्राचीन वेदान्त और आधुनिकता समन्वय स्थापित करता है। इस प्रकार यह दृष्टिगत होता है कि यद्यपि वर्तमान भारतीय चिंतन में पाश्चात्य विश्लेषणवादी और प्राचीन अस्तित्ववादी विचारधारा का भी प्रभाव यत्र–तत्र दृष्टिगत होता है, लेकिन इसमें किसी भी प्रकार का संदेह नहीं किया जा सकता है कि अधिकांश वर्तमान भारतीय विचारक परम्परागत चिंतन से प्रभावित है लेकिन यहाँ इस तरह की भ्रांति नहीं होनी चाहिए कि उनका चिंतन केवल पुनरावृतिमात्र है। अतीत के प्रति आस्था रखना रूढ़िवादी होना कतई नहीं है। वस्तुतः इस आधार पर यह भी नहीं कहा जा सकता है कि यहाँ मौलिकता और सृजनशीलता का अभाव हैं। शंकर ने अपने अद्वैतवाद के प्रतिपादन के संदर्भ में उपनिषदों और ब्रह्मसूत्रों को आधार अवश्य बनाया है, लेकिन उनकी रचनाओं में मौलिकता का परिचय हमें प्राप्त होता है।

स्वामी विवेकानन्द जी ने वेदान्त के संदर्भ में व्यावहारिक वेदान्त की बात की है। प्रो. के. सच्चिदानंद मूर्ति इस संदर्भ में ठीक ही मानते है कि आधुनिक भारतीय चिंतन पर सामाजिक ओर राजनैतिक स्थितियों का प्रभाव पड़ा है।3 इस प्रकार सामान्यतया समकालीन भारतीय चिंतन में यथार्थवादी और व्यावहारिक दृष्टिकोण की प्रधानता प्रतीत होती है। इसलिए समकालीन भारतीय चिंतन के सम्बन्ध में केवल यह मानना कि यह प्राचीन चिंतन की पुनरावृति है, उचित नहीं प्रतीत होता है। उसकी अपनी विशिष्टता और महत्ता है।

आधुनिक भारतीय चिंतन के प्रारम्भ में समाज और धर्म सम्बन्धी सुधारवादी आन्दोलनों की अपनी विशेष भूमिका दिखाई देती है। मध्यकालीन भारतीय चिंतन में, विशेष रूप से धर्म के क्षेत्र में एक प्रकार का गतिरोध, दृष्टिगत होता है। विपरीत राजनैतिक परिस्थितियों के कारण हिन्दू धर्म के विकास में अनुकूल परिस्थितियों के अभाव के कारण गतिरोध सा प्रतीत होता है। ऐसी स्थिति में संतकवियों के माध्यम से ही मध्य युग में दार्शनिक और धार्मिक चिंतन सुरक्षित रह पाया। फिर भी धर्म के क्षेत्र में बहुत सारे कुसंस्कार प्रविष्ट हो गए। अनेक अन्धविश्वासपूर्ण प्रथाओं का भी प्रवेश हो गया। इस प्रकार आधुनिक युग में इस बात की आवश्यकता हुई कि हिन्दू धर्म को इन कुसंस्कारों और कुप्रथाओं से मुक्त किया जाए। इसी उद्देश्य से ब्रह्म समाज, प्रार्थना समाज, आर्य समाज, रामकृष्ण मठ और संघ ..... आदि विभिन्न धार्मिक सुधारवादी आन्दोलनों का विकास हुआ।

राजा राममोहन राय को ब्रह्म समाज का संस्थापक माना जाता है। इस सम्बन्ध में डी.एस. शर्मा ने इस आशय का विचार स्पष्टतया व्यक्त किया है और सामाजिक और शैक्षणिक क्षेत्र में उनके योगदान की सराहना की है।4 एक ओर ब्रह्मसमाज के द्वारा हिन्दू धर्म में प्रविष्ट कुरीतियों और कुसंस्कारों का निराकरण किया गया तो दूसरी तरफ धर्म के क्षेत्र में उनके द्वारा एकेश्वरवादी पद्धति और विश्वास पर विशेष बल दिया गया है। उन्होंने ब्रह्मसमाज के लिए जिस साधना को मान्यता प्रदान की, वह वेदान्त की साधना का ही एक रूप है। इस साधना से गायत्री–मंत्र तथा उपनिषदों के कुछ

Vol. 8 No. 1-2, March-Sep. 2017
ISSN : 0976-0237

मंत्रों की सहायता से परम–तत्व का चिन्तन–मनन किया जाता है। इसके अतिरिक्त निर्वाण–तंत्र के एक स्त्रोत का भी पाठ किया जाता था।5

केशवचन्द्र ने भारतीय ब्रह्मसमाज को सार्वदेशिक रूप दिया और इसके अंतगर्त हिन्दू, बौद्ध, ईसाई, इस्लाम आदि सभी धर्मों के धर्म ग्रंथों से उद्धरण संकलित किए गए और इस आधार पर 'श्लोक–समूह' को प्रस्तुत किया गया। ऐसा माना जाता है कि ब्रह्मसमाज सभी धर्मों के प्रति आदर का भाव रखता है।

प्रार्थना समाज धार्मिक सुधारवादी आन्दोलन के रूप में ब्रह्मसमाज की एक प्रशाखा के रूप में दक्षिण भारत में विकसित आन्दोलन है। इसके प्रवर्तक न्यायमूर्ति राना डे थे जिन्होंने समन्वयवादी और भक्तिवादी आन्दोलन का नेतृत्व किया। इसके पश्चात् आर्य समाज का धार्मिक सुधारवादी आन्दोलन आता हैं चमुपति पण्डित ने इसके सम्बन्ध में ठीक ही बतलाया है कि जिस तरह मध्ययुग में भक्तिवादी आंदोलन का विकास इस्लाम धर्म की प्रतिक्रिया के अर्थ में दिखाई पड़ता है, उसी तरह ऐसा माना जा सकता है कि आर्य समाज का उद्भव और विकास ईसाई धर्म की प्रतिक्रिया के रूप में हुआ है।6 यहाँ वेदों के आलोक में हिन्दू धर्म के विवेचन की बात की गई है। वे वैदिक हिन्दू धर्म के पक्षधर प्रतीत होते हैं और पौराणिक हिन्दू धर्म को संभवतः वे बहुत महत्व नहीं देते हैं।

आर्यसमाज की तरह देवसमाज भी सामाजिक–धार्मिक सुधारवादी आन्दोलन था। इसके संस्थापक देवात्मा थे। इसके सम्बन्ध में एस.पी.कनल ने बतलाया कि किस प्रकार उन्होंने धार्मिक सुधारवादी दृष्टिकोण से धर्म को प्रगतिशील रूप में प्रस्तुत किया है।7

दिव्य जीवन संघ के सम्बन्ध में इसके संस्थापक स्वामी शिवानन्द का धर्म दर्शन सर्वधर्म समभाव के दृष्टिकोण से अधिक प्रासंगिक प्रतीत होता है। यद्यपि वे तकनीकी अर्थ में दर्शनशास्त्री नहीं थे। फिर भी दर्शन और धर्म के क्षेत्र में उनका महत्वपूर्ण योगदान है। स्वामी जी ने एक ऐसे धर्म दर्शन को विकसित किया, जिसमें उन्होंने सभी धर्मों को महत्वपूर्ण स्थान दिया है।8 स्वाभाविक रूप में धर्मों की मौलिक एकता में उनका विश्वास पूरा है। फलतः सभी धर्मों के प्रति वे आदर का भाव रखते हैं। धर्म–संस्थापकों ने सत्य को सम्प्रेषित किया है, परन्तु उनका सर्जन नहीं किया है। सृष्टि के प्रारम्भ से ही किसी नए धर्म का प्रादुर्भाव नहीं हुआ है। अन्ततः धर्म का स्त्रोत दिव्य ही है। विभिन्न धर्मो में विरोध हमारे पूर्वाग्रहों, धर्मान्धता, हृदय की अपवित्रता तथा भ्रष्ट बुद्धि के कारण दिखलाई पड़ता है।9

धार्मिक सुधारवादी आन्दोलन में थियोसोफिकल सोसायटी का भी उल्लेख किया जा सकता है। उन्नीसवी सदी के प्रारंभिक काल में हिन्दू धर्म के इतिहास की महत्वपूर्ण व्यक्ति थी श्रीमती एनीबेसेंट जिन्होंने अपनी यूरोपीय त्वचा के नीचे एक शुद्ध भारतीय हृदय छिपा रखा था। रूसी महिला मैडल बलावट्स्की की चर्चा किए बिना एनीबेसेंट की चर्चा अधूरी रहेगी। मैडम ब्लावट्स्की गुह्या शक्तियों की स्वामिनी थी। विदेशी महिला होते हुए भी हिन्दू धर्म के प्रति आस्था, उनके धार्मिक उदारतावाद और सर्वधर्म समभाव के दृष्टिकोण का ज्वलंत उदाहरण है। सन् 1875 में अमरीका में कर्नल ओलकाट उनके विचारों से बहुत प्रभावित हुए और उनकी अनुमति लेकर श्रीमती एनीबेसेंट ने न्यूयार्क में थियोसोफिकल सोसायटी की स्थापना की।10

स्मकालीन भारतीय दर्शन के इतिहास में यों तो अनेक प्रसिद्ध चिंतक और दार्शनिक हुए हैं, लेकिन स्वामी विवेकानंद, महात्मा गांधी का धर्म–दर्शन इस दृष्टिकोण से अत्यंत ही महत्वपूर्ण दिखाई

Vol. 8 No. 1-2, March-Sep. 2017
ISSN : 0976-0237

पड़ता है। डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन् आधुनिक भारतीय (शास्त्रीय) दार्शनिकों में अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। दर्शन के शुष्क विषयों की सरस प्राणवंत शैली में व्याख्या तथा धर्म के क्षेत्र में पूर्व एवं पश्चिम के वैचारिक भेदों को दूर कर उनके बीच सेतु–निर्माण डॉ. राधा कृष्णन् का आधुनिक भारतीय दर्शन के क्षेत्र में मुख्य योगदान है।11 उनके दर्शन के सम्बन्ध में अधिक विस्तृत जानकारी के बदले केवल इतना ही संकेत करना पर्याप्त होगा कि वे नव्य–वेदान्तवादी हैं और उन्होंने वेदान्त को आधुनिक वैज्ञानिक चिंतन के परिप्रेक्ष्य में अधिक यथार्थवादी ढंग से प्रस्तुत किया है। पूर्व तथा पश्चिम से परिचित कराने में अन्य किसी को इतना श्रेय नहीं दिया जा सकता जितना राधाकृष्णन् को।12

धर्म के सम्बन्ध में वर्तमान युग में तरह–तरह की भ्रांतिया दिखाई पड़ती हैं। लोग धर्म के नाम पर संघर्ष और अलगाववादी प्रवृतियों की बात करते हैं। लेकिन रामकृष्ण और विवेकानंद की तरह डॉ. भगवानदास भी धर्म को अलगाववादी प्रवृतियों का आधार नहीं मानते। उनके अनुसार धर्म हमें एकसूत्र में बाँधता है। समाज में लोगो को बाँधे रखना या मिलाए रखना तभी हो सकता है जब सभी एक दूसरे को कुछ दे रहे और एक दूसरे से लेते रहे। इसी को 'हक.', 'फर्ज', 'अधिकार' और 'कर्त्तव्य' का नाम दिया जाता है।13

धर्म के सम्बन्ध में इस प्रकार की भी आपत्तियाँ उठायी जाती है कि यह संघर्ष, विघटन, तनाव, दंगें आदि का कारण होता है। यह ठीक है कि धर्म की आड़ में देश और विदेश में यत्र–तत्र युद्ध, संघर्ष, तनाव आदि हुए हैं और होते भी हैं, लेकिन वस्तुतः धर्म उनके लिए उत्तरदायी नहीं है। स्वार्थवादी राजनीतिज्ञ भी या धर्म के ठेकेदार धर्म के आधार पर लोगों के बीच तनाव की बात उत्पन्न करते हैं। लेकिन इसमें धर्म का कोई दोष नहीं है। प्रो. हिक्स ने इस सम्बन्ध में ठीक ही बताया है कि मध्य एशिया या भारत में जो धर्म के नाम पर युद्ध आदि हुए हैं उसका कारण राजनीति, इतिहास, आर्थिक बाते हैं न कि धर्म।14

चार्वाक, फ्रायड मार्क्स आदि ने भी धर्म के वास्तविक महत्व को नहीं समझा है। चार्वाक उसे शोषण का कारण मानते हैं। वैदिक कर्मकांड के संदर्भ में उनके द्वारा यह बतलाया गया है कि ब्राह्मणों और पुरोहितों के द्वारा धर्म के नाम पर सामान्य लोगों का शोषण किया गया है।

फ्रायड ने भी धर्म को काल्पनिक ही बतलाया है। मार्क्स धर्म को 'अफीम का नशा' की संज्ञा देते हैं क्योंकि वह उनके अनुसार परिवर्तन या प्रगति में बाधक सिद्ध होता है। इस प्रकार धर्म के सम्बन्ध में विभिन्न प्रकार की आपत्तियाँ उठाई जाती हैं लेकिन यदि इस पर ध्यानपूर्वक विचार किया जाए तो ऐसा स्पष्ट हो जाएगा कि वास्तविक धर्म अलगाव या पृथकतावादी तत्वों का कारण नहीं हो सकता है। धर्म तो मनुष्य को एक सूत्र में बाँधता है, वह सभी को जोड़ता है, तोड़ता कतई नहीं।15

धर्म के सम्बन्ध में पाश्चात्य विद्वानों ने भी परम्परागत दृष्टिकोण में अध्ययन प्रस्तुत किया है। धर्म में भावना, ज्ञान और कर्म तीनों पक्षों की अपनी महत्वपूर्ण भूमिका होती है।16 गैलवे ने अपने विवेचन में यह बतलाने का प्रयास किया है कि धर्म उच्चतर सत्ता में आस्था के द्वारा व्यक्ति अपनी समीक्षा की पूर्ति का प्रयास विभिन्न क्रियाओं, जैसे प्रार्थना, पूजा आदि के द्वारा करने का प्रयास करता है। इस प्रकार धर्म के तीनों पक्षों के प्रति उन्होंने न्याय करने का प्रयास किया है।

भारतीय विद्वान स्वामी विवेकानंद ने वेदान्त के आधार पर धर्म की व्याख्या प्रस्तुत की है और बतलाया है कि धर्म न तो कर्मकांड है और न केवल वार्तालाप। उनके अनुसार धर्म आत्म–प्राप्ति या

पूर्णता की प्राप्ति से सम्बन्ध रखता है। धर्म की महत्ता इससे भी विदित होती है कि मानवीय इतिहास में किसी न किसी रूप में धर्म की मान्यता प्रत्येक काल, स्थान व समाज में रही है। आधुनिक युग के उच्च कोटि के विद्वान रसेल और सार्त्र सरीखे दार्शनिक भी इस बात को स्वीकार करते हैं कि धर्महीन या ईश्वरहीन जग की कल्पना खिन्नता का कारण बनती है।17

आज का विज्ञान ठोस जड़ की अपेक्षा शक्ति की बात करता है। स्वामी जितात्मानन्द, स्वामी मुख्यानन्द आदि ने अपनी विद्वतापूर्ण रचनाओं में इस आशय का विचार स्पष्टतया व्यक्त किया है। इस युग के प्रसिद्ध वैज्ञानिक आइंस्टाईन आदि ने भी ईश्वर और धर्म की महत्ता को अपने ढंग से स्वीकार किया है। आज के वैज्ञानिक युग में धर्म की महत्वपूर्ण भूमिका को अस्वीकार करना अनुचित दिखाई पड़ता है। रौलेण्ड ने इस सम्बन्ध में ठीक ही कहा है कि ऐसा नहीं कहा जा सकता कि विज्ञान ठीक और धर्म गलत होता है। वस्तुतः दोनों अपने–अपने क्षेत्र में ठीक ही होते हैं।18 ओ. पी. त्यागी ने भी इस आशय का विचार स्पष्टतया प्रस्तुत किया है कि आधुनिक विज्ञान के विभिन्न आविष्कारों और अनुसांधनों के फलस्वरूप आज उसके प्राचीन भौतिकवादी दृष्टिकोण में बहुत कुछ शिथिलता दृष्टिगत होती है।19

धर्मों की अनेकता के सम्बन्ध में विश्व–धर्म सम्बन्धी आदर्श और अवधारणा बहुत कुछ संतोषजनक प्रतीत नहीं होती है क्योंकि सभी मनुष्य से यह अपेक्षा नहीं की जाती है कि वह एक ही धर्म का अनुसरण करें और एक ही प्रकार के ईश्वर की अवधारणा में विश्वास करे। गंगोत्री के जल की तरह धर्म का मौलिक स्वरूप प्रांजल है। परन्तु, यही सत्धर्म जब 'वादी' या सम्प्रदायों के काले कारनामों की गिरफ्त में आता है तो मैदानी गंगाजल (कानपुर या हुगाली की गंगा) की तरह दूषित हो जाता है।20

सर्व–धर्म समभाव पर विचार करने के संदर्भ में सर्व–धर्म–समन्वय की ओर भी संकेत किया जा सकता है। 'समन्वय' का अर्थ होता है, संयोग, मिलन और विरोध का अभाव। इस प्रकार सर्व–धर्म–समभाव विभिन्न धर्मों की एकता और उनमें विरोध के अभाव पर जोर देता है। धर्म–समन्वय का अर्थ उनमे समानता या एकता देखना है।

धर्म की भूमिका आज के युग में भी है। सच्ची बात तो यह है कि आज लोग विज्ञान के प्रति ही अधिक आकृष्ट हो रहे हैं क्योंकि उसके द्वारा बाह्य रूप से मुनष्य बहुत लाभान्वित हुआ है। उसे बहुत सारी सुख–सुविधा उपलब्ध हुई। फिर भी विज्ञान की सीमा है। वह मनुष्य को केवल बाह्य सुख–सुविधा प्रदान कर सकता है। वह उसे सुख–शांति नहीं दे सकता है। धर्म का उद्देश्य उन बौद्धिक उद्देश्यों एवं परमशुभ की प्राप्ति है, जिनसे जीवन का बौद्धिक स्तर ऊँचा उठता है। धर्म के सम्बन्ध में यह दृष्टिकोण वैज्ञानिक है और इसी को अपनाने से मानव अपने को स्वार्थ भावना से ऊपर उठा सकेगा।21

इस प्रकार समकालीन भारतीय चिंतन में सर्वधर्म समभाव का स्पष्ट और उचित स्थान प्रतीत होता है। यद्यपि समकालीन भारतीय चिन्तन में स्वाभाविक रूप से पाश्चात्य विश्लेषणवादी और अस्तित्ववादी चिन्तन का प्रभाव पड़ा है। फिर भी अधिकांश समकालीन भारतीय दार्शनिक प्राचीन भारतीय चिन्तन से प्रभावित और प्रेरित होते हैं। लेकिन इसका यह अर्थ नहीं है कि समकालीन भारतीय दर्शन केवल प्राचीन भारतीय दर्शन की पुनरावृति है। वस्तुतः भारतीय चिंतन में एक सृजनात्मक और रचनात्मक पुनर्व्याख्या का प्रयास आवश्यक है। इस सम्बन्ध में नव्य वेदान्त की बात कही गई है और यह दिखलाया जाता है कि नव्य वेदान्त प्राचीन और आधुनिक का सामंजस्य है।

Vol. 8 No. 1-2, March-Sep. 2017
ISSN : 0976-0237

संदर्भ सूची

1. दास गुप्ता एस.एन., ए हिस्टी ऑफ इंडियन फिलॉसफी, कैम्ब्रिज 1922–25, वाल्यूम 1, पृष्ठ 66
2. देवराज एन.के. 'इंडियन फिलॉसफी टुडे', द मैक्मीलन कंपनी ऑफ इंडिया लिमिटेड, पृष्ठ 9
3 पांडे एस.एल. ' द स्कॉप ऑफ नियो वेदान्ता, रिव्यू ऑफ दर्शन, वाल्यूम– 11, नं. 1, जुलाई 1981, फिलॉसफी डिपार्टमैंट, यूनिवर्सिटी ऑफ इलाहाबाद, पृष्ठ 2
4. शर्मा डी.एस., हिन्दुजम थ्रू एजेस, भारतीय विद्या भवन, कुलपति मुंशी मार्ग, बॉम्बे, पृष्ठ 121–122
5. शिवानन्द स्वामी 'जन्म–शताब्दी स्मृति ग्रंथ' 'दिव्य जीवन संघ प्रकाशन, शिवानंद नगर, टिहरी–गढ़वाल, उ. प्र., पृष्ठ 366–367
6. पं. चमुपति, 'द आर्य समाज; द कल्चरल हेरिटेज ऑफ इंडिया, वॉल्यूम–4, द रामकृष्ण मिशन, इंस्टीट्यूट ऑफ कल्चर, कलकत्ता 1969, पृष्ठ 634
7. कनल एस.पी. 'नेच्युरलिज्म इन मॉडर्न इंडियन फिलॉसफी, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 1966, पृष्ठ 4
8. शर्मा ए.एन. 'मॉडर्न सेटंस् एंड मिसटिक्स; द डिवाइन लाइफ सोसाइट, गढ़वाल, पृष्ठ 126
9. शिवानन्द स्वामी, 'अनेक धर्मः एक धर्म', स्वामी शिवानन्द जन्म–शताब्दी स्मृति–ग्रंथ, दिव्य जीवन संघ प्रकाशन, पृष्ठ 283
10. शिवानन्द स्वामी, ब्रह्मविद्या समाज, स्मृति ग्रंथ, पृष्ठ 377
11. श्री कोयल कुमार प्रमोद, 'आधुनिक भारतीय दर्शन; सम्पादक– डॉ. नन्द किशोर देवराज, पृष्ठ 697
12. मूर्ति के.एस., ज.र.ल.स. नारायणमूर्ति, सर्वपल्ली राधाकृष्णन का दर्शन, 'समकालीन भारतीय दर्शन', आन्ध्र विश्वविद्यालय, अखिल भारतीय दर्शन परिषद्, वर्ष 1962, पृष्ठ 116
13. शास्त्री मंगलदेव, 'धर्म प्रवक्ता आचार्य भगवान दास', डॉ. भगवान दास जन्मशती ग्रंथ, पृष्ठ 69–70
14. प्रो. हिक जान 'फिलॉसफी, रिलीजन एंड हयूमन यूनिटी' (सेंटर फॉर एडवांसड स्टडी इन फिलॉसफी, यूनिवर्सिटी ऑफ मद्रास 1974), पृष्ठ 462
15. डॉ. सिन्हा एस.बी.पी. 'द इम्पोरर्टेस ऑफ रिलीजन, वेदांत केसरी, अगस्त 1970, पृष्ठ 194
16. ली कीनसन एट. 'ग्राऊंड वर्क ऑफ द फिलॉसफी ऑफ रिलीजन', लंदन, पृष्ठ 23
17. ब्रह्मों सी.पी., धर्म–दर्शन की आवश्यकता, 'दार्शनिक, त्रैमासिक, वर्ष–10 अंक–4, अक्तूबर 1964, पृष्ठ 207–208
18. रौलेंड जॉन–साइंस एंड रिलीजन, अक्टूबर 1961, लंदन, पृष्ठ 9
19. त्यागी ओ.पी. 'साइंस एंड रिलीजन; वैदिक लाइट, वाल्यूम 1, नं 8, अक्तूबर 1967, पृष्ठ 2
20. डॉ. पाण्डेय दुर्गादत्त, चिन्तन के विविध आयाम, पृष्ठ 36
21. कुमार रजनीश, 'गांधी की शहादतः अर्थ एवं महत्व' गांधी शांति प्रतिष्ठान, मार्च–अप्रैल 2000, गांधी मार्ग, नई दिल्ली, पृष्ठ 59–60